विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५३० | श्रावण पूर्णिमा | १९ अगस्त १९८६ | वर्ष १६ अंक २

धम्म वाणी

मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो, सच्चानं चतुरो पदा ।
विरागो सेट्ठो धम्मानं, द्विपदानं च चक्खुमा ॥
– धम्मपद - २०/१

मार्गों में अष्टांगिक मार्ग श्रेष्ठ है, सच्चाइयों में चार आर्य-सत्य, धर्मों में वीतरागता श्रेष्ठ है, द्विपद मनुष्यों में चक्षुमान बुद्ध ।

धर्मचक्र कथा

(२)

धर्मचक्र–प्रवर्तन किससे आरंभ करें ? पहले किसे धर्म बांटें ? कौन योग्य पात्र है ?

तथागत के अन्तर में करुणा के साथ कृतज्ञता का भाव जागा। गृह त्यागने के बाद आचार्य आलारकलाम और उद्दक रामपुत्र से क्रमशः सातवां एवं आठवां ध्यान सीखा था । वे दोनों ही योग्य हैं। इस गंभीर धर्म को खूब समझेंगे और इस कल्याणकारी विधि को अपनाकर अपना कल्याण साध लेंगे । फिर बोधि–नेत्र से देखा तो पता चला कि पहले की सात दिवस पूर्व और दूसरे की एक दिवस पूर्व शरीर–च्युति हो गयी है । दोनों सातवीं और आठवीं ध्यान-समापत्तियों के साधक होने के कारण अब अरूप ब्रह्मलोक में जन्मे हैं। अरूप ब्रह्मलोक में उन्हें विपश्यना कैसे सिखायी जाय ? सिखानेवाले में क्षमता की कमी नहीं । भवाग्र ब्रह्मलोक में सम्यक् सम्बुद्ध की गति भी अशक्य नहीं । वहाँ जाकर उनसे संपर्क किया जा सकता है । परंतु अरूप ब्रह्मलोक के प्राणी विपश्यना कर नहीं सकते । उनका जीवन बिना रूपके याने बिना शरीर के होता है । केवल नाम याने केवल चित्त । और विपश्यना की साधना अपने ही नाम और रूप दोनों के मिले–जुले प्रपंच–दर्शन करने की साधना है ताकि इन दोनों से और उनसे संबंधित इंद्रियों के प्रपंचों से छुटकारा पाया जा सके । अरूप ब्रह्मलोक के प्राणी विपश्यना के अधिकारी नहीं । अतः किसी और से शुरू करना होगा ।

फिर करुणा के साथ कृतज्ञता का भाव जागा । स्मरण हो आए कौण्डिन्य, भद्दिय, कप्प, महानाम और अश्वजित । वे पांच ब्राह्मण जो लगभग छह वर्ष तक सेवा में रत रहे। दुष्कर तपश्चर्या में साथ रहे। भले नासमझी के कारण रुष्ट होकर छोड़ गए, पर हैं योग्य पात्र। अवश्य ही सद्धर्म को समझ कर और उसे धारणकर मुक्त हो सकेंगे । उनसे ही आरंभ करना चाहिए । बोधिनेत्रों से देखा तो पता चला कि वे इस समय वाराणसी के समीप ऋषिपत्तन मृगदाय प्रदेश में टिके हुए हैं ।

प्रथम धर्मचक्र–प्रवर्तन करने के लिए भगवान उरुवेला (बोधगया) से ऋषिपत्तन मृगदाय (आधुनिक सारनाथ) की ओर चल दिए। पांचों संन्यासियों ने भगवान को दूर से आते देखा । उनका मानस पूर्वाग्रहों से ग्रसित था । देखो, यह भ्रष्ट योगी चला आ रहा है । उपवास त्यागकर भरपेट खाने–पीने लगा । दुर्बल–चित्त व्यक्ति है । अधिक कष्ट न सह सकने के कारण तप त्याग बैठा । सुख-आराम तथा लाभ-सत्कार की ओर झुक गया । त्याग तपस्या करते हुए जो सम्यक् सम्बुद्ध न बन सका, वह तप-च्युत होकर कैसे बनेगा भला ? यह तो ऐसे ही असंभव है जैसे कि हवा में गांठें बांधना, जैसे कि हवा को जाल में बांधना ।

यह हमारी ही ओर बढ़ा आ रहा है । भले आए । पर हम इसका कोई आदर–सत्कार नहीं करेंगे । आव–भगत नही करेंगे । न उठकर नमस्कार करेंगे, न आगे बढ़कर इसका पात्र–चीवर लेंगे । इक्ष्वाकु क्षत्रिय वंश में जन्मा है । इसलिए आसन का अधिकारी है। अतः हम इसके लिए एक आसन अवश्य देंगे । चाहे तो बैठे । इससे अधिक और कुछ नहीं ।

भगवान समीप आते गए । न केवल मुखमंडल पर प्रत्युत उनके सारे शरीर पर प्रभामंडल प्रकीर्ण हो रहा था। पांचों उनसे आकर्षित हुए बिना न रह सके । उनके अणु-अणु से मैत्री की तरंगें प्रवाहित हो रही थीं। पांचों उससे प्रभावित हुए बिना न रह सके। वे यकायक अपने संकल्प को भूल बैठें । भगवान के समीप आते ही सबने उठकर उनका अभिवादन किया। एक ने आगे बढ़कर उनके हाथ से पात्र–चीवर ले लिया। एक ने आदरपूर्वक आसन बिछाया । एक ने पांव धोने के लिए पानी का पात्र पास रखा। एक ने पैर रखने का पीढ़ा पास रखा और एक ने पांव रगड़ने की लकड़ी पास रखी । भगवान बिछे हुए आसन पर बैठे । अपने पांव धोए । बात-चीत शुरू हुई ।

पाँचों के मन में अभी संदेह का कुहरा छाया हुआ था। वे भगवान को आयुष्मान कहकर संबोधन कर रहे थे। जैसे आज भी अपने से छोटे को चिरंजीव कहा जाता है और बड़े को पूज्य। वैसे ही उन दिनों भी अपने से छोटे को आयुष्मान कहते थे अथवा उसका नाम लेकर सम्बोधन करते थे। उनकी नजरों में तथागत उनसे उम्र में ही नहीं, बल्कि ज्ञान की उपलब्धि में भी छोटे थे। क्योंकि तपच्युत जो हो गए थे।

भगवान ने उनकी भूल सुधारते हुए समझाया कि तथागत को नाम लेकर अथवा आयुष्मान कहकर न पुकारना चाहिए। वे अब अमृतदर्शी सम्यक् सम्बुद्ध हो गए हैं। परन्तु उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था। व्रत–उपवासों से ही मुक्ति मिलने की मान्यता के प्रति उनका अभिनिवेश इतना गहरा था कि वे भगवान की बात भी सुनने को तैयार नहीं थे। आखिर भगवान ने कहा कि मैंने सम्यक् सम्बुद्ध होने का दावा इसके पहले कभी नहीं किया। अब हुआ हूँ तो ही कह रहा हूँ। यह सुनकर कौण्डिन्य ने सोचा शायद यह व्यक्ति झूठ नहीं बोल रहा। राजमहलों में राजकुमार का जीवन जीते हुए भी सत्यवादिता के बारेमें इसकी बड़ी प्रसिद्धि थी। हमारे साथ छह वर्ष रहते हुए भी इसने कभी मिथ्या वचन नहीं कहा। कौन जाने सम्यक् सम्बुद्ध हो ही गया हो। और फिर भगवान के दैदीप्यमान चेहरे की ओर देखा। उस पर छायी हुई करुणा और मैत्री की आभा की ओर देखा तो और आश्वस्त हुआ। फिर महापुरुषों के बत्तीस शरीर-लक्षणों की ओर ध्यान गया। शरीर-लक्षण शास्त्रों पर किए गए अपने गहरे अध्ययन पर ध्यान गया तो श्रद्धा जागी, विश्वास बढ़ा। भगवान का उपदेश सुनने के लिए मानस तैयार हुआ।

बाकी चारों के मन में अभी भी गहरा शक था, संदेह था, विचिकित्सा थी। अतः मानस धर्म ग्रहण करने योग्य नहीं था। इसी लिए भगवान बुद्ध का उपदेश सुना तो पांचों ने, परन्तु कौण्डिन्य को जो तत्काल लाभ हुआ, वह अन्य चारों को नहीं। कौण्डिन्य धर्मदेशना सुनते सुनते ही अपने भीतर उदय-व्यय की सच्चाई अनुभव करने लगा और अपने अनेक पूर्व-जन्मों में संचित, पुण्य-पारमिताओं के कारण अनुभूति के स्तर पर इस सच्चाई को जान गया कि जो कुछ समुदय–धर्मा है, वह निरुद्ध–धर्मा भी है ही। ऐंद्रिय जगत की सारी अनुभूतियाँ समुदय–धर्मा हैं। उसने देखा कारणों से उनका समुदय होता है। उसने देखा विपश्यना करते करते उन सबका निरुद्ध हो गया है। नाम और रूप पर आधारित छहों इंद्रियाँ और छहों इंद्रियों के विषय साक्षीभाव से देखते देखते निरुद्ध हो गए। इंद्रियातीत परम सत्य का पहली बार साक्षात्कार हुआ। कौण्डिन्य धन्य हुआ। उसका गोत्र बदला। वह अनार्य से आर्य गोत्र में प्रतिष्ठित हुआ। स्रोतापन्न हुआ। बाकी चारों स्रोतापन्न नहीं हो सके परन्तु उनकी विचिकित्सा दूर हुई। सद्धर्म के प्रति, कुदरत की सच्चाइयों के प्रति उनमें श्रद्धा जागी, आस्था जागी और वे भी अपनी अपनी संग्रहीत पुरानी पारमिताओं के आधार पर मुक्तिपथ पर आगे बढ़ सकने योग्य हुए। दूसरे दिन भगवान ने विपश्यना का मार्गदर्शन देकर वप्प स्थविर को स्रोतापन्न अवस्था तक पहुँचने में सहायता की तीसरे दिन भद्दिय को, चौथे दिन महानाम को और पांचवे दिन अश्वजित को। इस प्रकार जब पांचों स्रोतापन्न हुए तो दूसरे धर्मोपदेश " अनात्म लक्षण सूत्र " की देशना की, जिसे सुनकर पांचों की विपश्यना गहराइयों से जागी और पांचों के पांचों सगदागामी और अनागामी अवस्थाओं में से गुजरते हुए नितांत विमुक्त हुए। पंचवर्गीय भिक्षु अर्हंत हुए।

क्या था सम्यक् सम्बुद्ध का वह प्रथम उपदेश जिसने लोक-चक्र में पिसते हुए लोगों में धर्म-चक्र जगाने का शुभारंभ किया और इसीलिए धर्मचक्र प्रवर्तन–सूत्र कहलाया? वैसे तो यह अपने पांच साथी संन्यासियों को दिया गया था परन्तु वस्तुतः समस्त मानव जाति को दुःखविमुक्ति हेतु भगवान बुद्ध का यह प्रथम मार्ग–निर्देशन था, जिसके व्याख्यान–व्याकरण में, विवरण-विश्लेषण में ४५ वर्षों तक उनके हजारों उपदेश हुए। यह प्रथम उपदेश ही उनकी समस्त शिक्षा का आधार बना।

आओ, समझें क्या था यह उपदेश? कैसा था यह धर्मचक्र–प्रवर्तन?

पांचों श्रोताओं के मन में कमोवेश यह संदेह था कि कठोर तप का मार्ग त्यागकर सिद्धार्थ गौतम ने उचित नहीं किया। अतः उपदेश आरंभ करते हुए उनकी तथा उन जसे अनेकों की शंकाओं का निवारण किया और सही मार्ग प्रशस्त किया।

कोई व्यक्ति प्रव्रजित होता है तो सुखद परन्तु काम–भोग और विषय–वासनाओं में उलझाए रखनेवाले मार्ग का परित्याग करता है। लेकिन प्रतिक्रिया–स्वरूप देह–दंडन के ऐसे दुखद मार्ग पर चलने लगता है जो कि आध्यात्म की प्रगति में बाधक बन जाता है। दोनों ही अतियों के मार्ग हैं। दोनों से बचना चाहिए।

एक को कहा, **कामेसु कामसुखल्लिकानियोगो** याने काम–सुखों की गंदगी के चिपकाव में चिपके रहना। यह एक चरम सीमा वाला मार्ग है जो कि–

हीनो — याने हीन है, घटिया है, हल्का है।

गम्मो — याने गंवारू है। यद्यपि सुख–भोग की सारी सामग्रियाँ हर युग में नगरवालों को ही सुलभ होती हैं। फिर भी यह मार्ग नागर नहीं, गंवारू है याने समझदारों का नहीं, गंवारों का है।

पोत्थुज्जनिको — याने ऐसे लोगों का मार्ग है जो शुद्ध धर्म के मार्ग से पृथक हो गए हैं इसीलिए पुथुजन याने पृथकजन कहलाते हैं।

अनरियो — याने अनार्य लोगों का मार्ग है। ऐसा मार्ग है जिस पर चलकर कोई व्यक्ति आर्य बन ही नहीं सकता। अनार्य ही बना रहता है। याने मुक्ति के प्रथम सोपान स्रोतापन्न अवस्था तक भी नहीं पहुँच पाता।

अनत्थसंहितो – अनर्थों से युक्त है। ऐसे मार्ग पर चलनेवाला व्यक्ति कभी अपना भला नहीं कर सकता। अर्थ सिद्ध नहीं कर सकता। अनर्थ ही संग्रह करता है।

इसी प्रकार अतियों वाले दूसरे मार्ग को कहा गया :–

अत्तकिलमथानुयोगो – याने आत्मक्लेश का मार्ग। अपने आपको एक न एक शारीरिक क्लेश में लगाए ही रखने का मार्ग।

यह दूसरी चरमसीमावाला मार्ग है जो कि,

दुक्खो — याने दुखमय है। दुःखों से छुटकारादे नेवाला नहीं। एक के बाद एक नए दुःखों का उत्पाद करते रहनेवाला है।

अनारियो – याने यह भी पहले की तरह ऐसा मार्ग है जिस पर चलनेवाला कभी आर्य नहीं बन सकेगा, सदा अनार्य ही बना रहेगा।

अनत्थसंहितो – याने यह भी पहले की भाँति अनर्थकारी है।

अतियों के इन दोनों अनर्थकारी मार्गों को त्यागकर तथागत ने ऐसी मज्झिमा पटिपदा (मध्यमा प्रतिपदा) अपनायी जो कि, चक्खुकरणी है याने भासमान सत्य का भेदन कर परमार्थ सत्य का साक्षात्कार करा देनेवाले प्रज्ञाचक्षु प्राप्त करने के लिए है।

ञाणकरणी – याने प्रत्यक्ष अनुभूतियों के आधार पर सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लेने के लिए है।

उपसमाय – याने क्लेश–कषायों का उपशमन कर लेने के लिए है, उनका क्षय कर लेने के लिए है।

अभिञ्ञाय – याने समस्त आश्रवों के क्षय की स्थिति को स्वयं अनुभव करा देनेवाले अभिज्ञान को प्राप्त करने के लिए है।

सम्बोधाय – याने स्वयं बोधि प्राप्त करने के लिए है।

निब्बाणाय – याने सोपाधिशेष निर्वाण का दर्शन करते हुए, निरुपाधिशेष निर्वाण का साक्षात्कार करने के लिए है, जिससे कि भवचक्र पूरी तरह नष्ट हो जाता है। पुनर्भव होता ही नहीं।

कैसी है यह मध्यमा प्रतिपदा ? कैसा है यह मध्यम मार्ग?

इसे आर्य आष्टांगिक मार्ग कहते हैं याने आठ अंगवाला ऐसा मार्ग जिस पर चलनेवाला हर व्यक्ति देर–सबेर आर्य बन ही जाता है; हर बंदी मुक्त हो ही जाता है ; हर दुखियारा दुखमुक्त हो ही जाता है।

ये हैं इसके आठ अंग :–

सम्यक् दर्शन – याने सभी भ्रम–भ्रांतियों से छुटकारा पाकर भिक्षु शरीर और चित्त के यथार्थ स्वभाव को अनुभूतियों के स्तर पर सम्यक्रूप से साक्षीभाव से देखते हुए उनके परे इंद्रियातीत, भवातीत, लोकातीत परम सत्य का साक्षात्कार कर सके।

इसके लिए आवश्यक है –

सम्यक् संकल्प – याने संकल्प–विकल्प, चिंतन–मनन शुद्ध हो। मानस राग–द्वेष व हिंसा के भावों से दूर हटे, इसके लिए भिक्षु दृढ़–निश्चय हो।

सम्यक् वाणी – झूठ, कटुता, परनिंदा और निरर्थकता से भिक्षु की वाणी विरत रहे, सम्यक् बने।

सम्यक् कर्मांत – हत्या, चोरी, मैथुन जैसे शारीरिक दुष्कर्मों से भिक्षु विरत रहे।

सम्यक् आजीविका – लाभ–सत्कार पाने के लिए भिक्षु गृहस्थों की सेवा–चापलूसी अथवा उन्हें चमत्कार दिखाने आदि के गलत कामों से विरत रहे।

सम्यक् व्यायाम – दुर्गुणों को निकालने और न आन देने तथा सद्गुणों को लाने और बढ़ाने में भिक्षु सम्यक् प्रयत्नशील रहे।

सम्यक् स्मृति – अपने नाम और रुप (चित्त और शरीर) के प्रपंच के प्रति भिक्ष सतत सजग रहे।

सम्यक् समाधि – यों सजग रहते हुए भिक्षु सम्यक् रुपसे समाधिस्थ हो।

यह मध्यमा प्रतिपदा सम्यक् है क्योंकि संयमित है, संतुलित है। अतियों की ओर नहीं झुकती, न काम-भोग के सुखों में लोट–पलोट लगाने की ओर झुकती है और न देह–दंडन के निरर्थक दुखों से पीड़ित होने की ओर।

परम कल्याणकारिणी है यह, दोनों चरम अंतो को त्यागने–वाली, मध्यमा प्रतिपदा।

(क्रमशः)

कल्याणमित्र
सत्यनारायण गोयन्का

साधकों के उद्गार

अजमेर से श्री नृसिहदेव अरोड़ा लिखते हैं, "गत मार्च १९८६ में धम्मथली, जयपुर के शिविर के मेरे अनुभव अद्भुत रहे। ६९ वर्ष की अवस्था में भी उस अनुकूल वातावरण में ३९ की अनुभति करने लगा। देश-विदेश के लगभग १५० पुरुष/महिलाओं के बीच रहते हुए भी आर्य-मौन के कारण अकेलापन भला लगा।

मैंने अनुभव किया कि विपश्यना साधना किसी प्रकार की चिकित्सा-पद्धति से अधिक प्रभावशाली और जीने की अद्भुत कला है। इससे सारा शरीर चैतन्य हो उठा है और सभी शारीरिक अवरोध समाप्त हो गए हैं तथा क्रोध, भय, ईर्ष्या, दुख आदि की ग्रंथियाँ टूटी हैं। अब सूर्योदय के पूर्व नियमित अभ्यास कर रहा हूँ और बड़ा हल्कापन महसूस करता हूँ। इसी प्रकार सभी लोग प्रसन्न और सुखी हों।"

स्विटजरलैन्ड के जिनेवा नगर में रहनेवाली कु. माइक ट्री पॉल, जिसने कि अब तक विपश्यना के ५ शिविर लिए हैं, लिखती है कि "मेरा जन्म स्विटजरलैन्ड के एक संभ्रांत परिवार में हुआ। मेरा शिक्षण पुराने ढंग के कैथोलिक प्रणाली से हुआ। १९ वर्ष की उम्र में मैंने अपनी माता का घर त्याग दिया। पिता १३ वर्ष की अवस्था में ही स्वर्गवासी हो चुके थे और मैं लोगों के समूह में रहने लगी। कुछ समय बाद मैं एल. एस. डी. के संपर्क में आयी और उस के बहुत तीव्र अनुभव ने मुझे एक महिने तक मानसिक अस्पताल में रहने के लिए मजबूर किया। इसके बाद मैं भारत आयी और पूना के एक आचार्य के संपर्क में, उसी के आश्रम में डेढ़ वर्ष तक काम करती रही। इसके बाद उनके एक युरोप के आश्रम में भी बहुत दिनों तक काम किया। लेकिन मुझे उन सबसे आत्म-संतोष नहीं हुआ। मैं अपनी एक नेपाल यात्रा में विपश्यना के संपर्क में आयी और उससे यह पाया कि मेरे प्रमत्त चित्त को शुद्ध करने के लिए यह सबसे बेहतरीन साबुन है। मैं अत्यंत कृतज्ञ हूं।"

धम्मगिरि पर पुराने साधकों के लिये शिविर

(जो साधक नियमित रूप से विपश्यना का अभ्यास करते हैं तथा इसी मार्गपर अग्रसर होने के इच्छुक हैं, उन्हीं के लिये) शिविरमें शामिल होने के लिये पूर्व-स्वीकृति अनिवार्य है।

दिसम्बर ९ से १८—सतिपट्ठान शिविर
(प्रवचनों के दौरान सतिपट्ठान-सूत्र की व्याख्या होगी)

* जनवरी ३ से ३१—तीस दिवसीय दीर्घ शिविर
(वे साधक ही आवेदन करें जो दो वर्षों से नियमित रूपसे अभ्यास करते हैं तथा ५ शिविरें ले चुके हैं।)

* जनवरी ३ से फरवरी १०—चालीस दिवसीय दीर्घ शिविर
(जो तीस दिवसीय दीर्घ शिविर ले चुके हैं)

फरवरी १७ से मार्च ५—पू. गुरुजी का स्वयं-शिविर
(केवल बहुत पुराने स्वीकृति-प्राप्त साधक शामिल होंगे)

* इन शिविरों के लिये विशेष आवेदन-पत्र धम्मगिरि से प्राप्त हो सकेंगे। (आवेदन-पत्र की अंतिम ता.१५-११-८६)

अमेरिका में श्री राठीजी द्वारा संचालित शिविर

सिएटल – सितम्बर २५ से अक्टूबर ५

कैलीफार्निया – अक्टूबर ८ से १९

मैसाचुसेट्स – अक्टूबर २२ से नवम्बर २

संपर्क :
V. M. C. Dhammadhara
Box 24, Shelburne Falls,
Mass. 01370 Tel. (413) 625–2160

धम्मगिरि पर आवश्यकता है –

कन्स्ट्रक्शन सुपरवायज़र/साइट इन्जीनीयर

निर्माण कार्यको देखभाल करने के लिये यदि कोई अनुभवी साधक या उनका परिचित व्यक्ति, सवैतनिक रुपसे सेवा देने के लिए इच्छुक हो तो अपनी योग्यता तथा अपेक्षित वेतन आदि के विवरण के साथ व्यवस्थापक को तुरन्त आवेदन करें।

दूहा धरम रा

अतियाँ की बिरखा बुरी, बिन बिरखा दुरकाल।
सरदी गरमी अति हुवै, हुवै हाल बेहाल॥

पड़ अतियां कै फन्द मँह, दुख भोगै मतिमन्द।
अति सुन्दर सीता निरख, नस्ट हुयो दसकन्ध॥

ना खा खा पेटू हुवै, ना बरतां कंकाल।
चालै बिचलै पंथ पर, काटै भव जंजाल॥

काम भोग रति रंग मँह, डूब रयो थो मूढ।
काय दंड कै क्लेस की, करी साधना रूढ॥

दोनूं अतियां छोड़कर, चालै मांझल पंथ।
सील समाधी ग्यान सूं, सहजां हुइज्या संत॥

मंगल मांझल पंथ को, दियो बुद्ध उपदेस।
जो चाल्यो इं पंथ पर हुइग्या दुखड़ा सेस॥

दोहे धरम के

काम भोग की जिन्दगी, अतियों का इक अन्त।
कायकष्ट की साधना, अति का दूजा अन्त॥

तज दोनों अति जो चले, मध्यम पथ मतिमान।
काटे चित्त कषाय सब, पावे पद निर्वाण॥

जब सम्यक् संकल्प हो, सम्यक् वाणी होय।
सम्यक् हो कर्मान्त सब, शुद्ध जीविका होय॥

सम्यक् हो व्यायाम जब, स्मृति भी सम्यक् होय।
सतत सजग निज रूप पर, सजग नाम पर होय॥

जब समाधि सम्यक् बने, चित्त समाहित होय।
तब सम्यक् दर्शन जगे, सफल साधना होय॥

आठ अंग का आर्य पथ, शुद्ध धरम उपदेश।
चलते चलते स्वयं ही, कटें करम के क्लेश॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७
की मंगल कामनाओं सहित

विपश्यना विशोधन विन्यास के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. दूरभाष ८६
श्रावण पूर्णिमा * मुद्रण स्थान : विपश्यना प्रेस, धम्मगिरि, इगतपुरी. टेलिफोन : ७६, १७६ * August 86

वार्षिक शुल्क रु. १०/–
आजीवन शुल्क रु. १००/–

विपश्यना रजि. नं. 19156/71
पोस्टल रजि. नं. NS(M) 16/86

Licence No. NS 18
to post without prepayment

प्रेषक :
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि इगतपुरी–४२२४०३
(जि. नासिक, महाराष्ट्र, मध्य रेल्वे)